Chapter तेरह

महाराज निमि की वंशावली

इस अध्याय में उस वंश का वर्णन हुआ है जिसमें प्रकाण्ड विद्वान जनक पैदा हुए थे। यह महाराज निमि का वंश है जो इक्ष्वाकु के पुत्र बतलाये जाते हैं।

जब महाराज निमि ने महान् यज्ञों का शुभारम्भ किया तो उन्होंने वसिष्ठ को मुख्य पुरोहित बनाया। चूँकि उन्होंने इन्द्रदेव का यज्ञ सम्पन्न करना पहले ही स्वीकार कर लिया था अतएव उन्होंने इनकार कर दिया और कहा कि वे इन्द्र के यज्ञ की समाप्ति तक प्रतीक्षा करें। लेकिन महाराज निमि ने प्रतीक्षा नहीं की। उन्होंने सोचा, ''जीवन अल्प है अतएव प्रतीक्षा करना ठीक नहीं।'' अतएव उन्होंने यज्ञ कराने के लिए दूसरा पुरोहित नियुक्त कर लिया। इस पर वसिष्ठजी राजा निमि पर बहुत क्रुद्ध हो गये और उन्होंने शाप दे डाला, ''तुम्हारी मृत्यु हो जाए।'' इस पर निमि भी बहुत क्रुद्ध हुए और उन्होंने बदले में कहा, ''तुम भी मर जाओ।'' इस तरह शाप और प्रतिशाप के कारण वे दोनों मर गये। इस घटना के बाद उर्वशी द्वारा मित्र तथा वरुण को मोहित किये जाने के फलस्वरूप वसिष्ठ ने पुनः जन्म लिया।

जो पुरोहित राजा निमि का यज्ञ कराने वाले थे उन्होंने निमि के शरीर को सुगन्धित रसायनों से सुरक्षित रखा। जब यज्ञ समाप्त हुआ तो पुरोहितों ने यज्ञशाला में आये समस्त देवताओं से प्रार्थना की कि निमि को जीवनदान दें लेकिन महाराज निमि ने भौतिक शरीर धारण करके फिर से जन्म लेने से मना कर दिया क्योंकि वे भौतिक शरीर को दूषित मानते थे। तब ऋषियों ने निमि के शरीर का मंथन किया जिसके फलस्वरूप जनक उत्पन्न हुए।

जनक के पुत्र का नाम उदावसु था। उदावसु का पुत्र नन्दिवर्धन हुआ, उसका पुत्र सुकेतु हुआ जिसके बाद क्रमशः देवराट, बृहद्रथ, महावीर्य, सुधृति, धृष्टकेतु, हर्यश्व, मरु, प्रतीपक, कृतरथ, देवमीढ, विश्रुत, महाधृति, कृतिरात, महारोमा, स्वर्णरोमा, ह्रस्वरोमा तथा शीरध्वज हुए। ये सभी पुत्र इस वंश में एक दूसरे के बाद हुए। शीरध्वज से सीतादेवी का जन्म हुआ। शीरध्वज का पुत्र कुशध्वज हुआ और कुशध्वज का पुत्र धर्मध्वज था। धर्मध्वज के दो पुत्र हुए—कृतध्वज तथा मितध्वज। कृतध्वज का पुत्र केशिध्वज हुआ और मितध्वज का खाण्डिक्य। केशिध्वज स्वरूपसिद्ध व्यक्ति था। उसके पुत्र का नाम भानुमान था जिससे आगे

के वंशज इस प्रकार हुए—शतद्युम्न, शुचि, सनद्वाज, ऊर्जकेतु, अज, पुरुजित, अरिष्टनेमि, श्रुतायु, सुपार्श्वक, चित्ररथ, क्षेमाधि, समरथ, सत्यरथ, उपगुरु, उपगुप्त, वस्वनन्त, युयुध, सुभाषण, श्रुत, जय, विजय, ऋत, सुनक, वीतहव्य, धृति, बहुलाश्व, कृति तथा महावशी। ये पुत्र सभी महान् आत्मसंयमी पुरुष थे। यही सम्पूर्ण वंशावली है।

श्रीशुक उवाच
निमिरिक्ष्वाकुतनयो वसिष्ठमवृतर्त्विजम् ।
आरभ्य सत्रं सोऽप्याह शक्रेण प्राग्वृतोऽस्मि भोः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; निमिः—राजा निमि ने; इक्ष्वाकु-तनयः—महाराज इक्ष्वाकु के पुत्र; वसिष्ठम्—वसिष्ठ को; अवृत—नियुक्त किया; ऋत्विजम्—यज्ञ का प्रमुख पुरोहित; आरभ्य—प्रारम्भ करके; सत्रम्—यज्ञ; सः—उसने, वसिष्ठ ने; अपि—भी; आह—कहा; शक्रेण—इन्द्र द्वारा; प्राक्—पहले से; वृतः अस्मि—नियुक्त हो चुका हूँ; भोः—हे राजा निमि।

श्रील शुकदेव गोस्वामी ने कहा : यज्ञों का शुभारम्भ कराने के बाद इक्ष्वाकु पुत्र महाराज निमि ने वसिष्ठ मुनि से प्रधान पुरोहित का पद ग्रहण करने के लिए अनुरोध किया। उस समय वसिष्ठ ने उत्तर दिया, ''हे महाराज निमि, मैंने इन्द्र द्वारा प्रारम्भ किये गये एक यज्ञ में इसी पद को पहले से स्वीकार कर रखा है।''

तं निर्वर्त्यागमिष्यामि तावन्मां प्रतिपालय ।
तूष्णीमासीद्गृहपतिः सोऽपीन्द्रस्याकरोन्मखम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस यज्ञ को; निर्वर्त्य—समाप्त करने के बाद; आगमिष्यामि—वापस आ जाऊँगा; तावत्—तब तक; माम्—मेरी; प्रतिपालय—प्रतीक्षा करो; तूष्णीम्—चुप; आसीत्—हो गया; गृह-पतिः—महाराज निमि; सः—उसने, वसिष्ठ ने; अपि—भी; इन्द्रस्य—इन्द्र के; अकरोत्—सम्पन्न किया; मखम्—यज्ञ को।

''मैं इन्द्र का यज्ञ पूरा कराकर यहाँ वापस आ जाऊँगा। कृपया तब तक मेरी प्रतीक्षा करें।'' महाराज निमि चुप हो गए और वसिष्ठ इन्द्र का यज्ञ सम्पन्न करने में लग गये।

निमिश्चलमिदं विद्वान्सत्रमारभतात्मवान् ।
ऋत्विग्भिरपरैस्तावन्नागमद्यावता गुरुः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

निमिः—महाराज निमि ने; चलम्—किसी भी क्षण समाप्त होने वाले; इदम्—इस (जीवन) को; विद्वान्—इस तथ्य से भलीभाँति अवगत होकर; सत्रम्—यज्ञ को; आरभत—शुरू किया; आत्मवान्—स्वरूपसिद्ध व्यक्ति; ऋत्विग्भिः—पुरोहितों द्वारा; अपरैः—वसिष्ठ के अतिरिक्त अन्य; तावत्—उस समय तक; न—नहीं; आगमत्—लौट आया; यावता—जब तक; गुरुः—गुरु (वसिष्ठ)।

महाराज निमि स्वरूपसिद्ध जीव थे अतएव उन्होंने सोचा कि यह जीवन क्षणिक है; अतएव दीर्घकाल तक वसिष्ठ की प्रतीक्षा न करके उन्होंने अन्य पुरोहितों से यज्ञ सम्पन्न कराना शुरू कर दिया।

तात्पर्य : चाणक्य पण्डित का कथन है— *शरीरं क्षणविध्वांसि कल्पान्तस्थायिनो गुणाः*—इस संसार में मनुष्य की आयु किसी भी क्षण समाप्त हो सकती है, किन्तु यदि कोई इसी जीवन में कुछ उल्लेखनीय कार्य करता है तो इस गुण का अंकन इतिहास में सदा-सदा के लिए हो जाता है। महाराज निमि इस तथ्य को जानते थे। मानव जीवन पाकर मनुष्य को इस तरह कर्म करना चाहिए जिससे वह अन्त में भगवद्धाम जा सके। यही आत्म-साक्षात्कार है।

शिष्यव्यतिक्रमं वीक्ष्य तं निर्वर्त्यागतो गुरुः ।
अशपत्पतताद्देहो निमेः पण्डितमानिनः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

शिष्य-व्यतिक्रमम्—शिष्य द्वारा गुरु के आदेश से विचलन को; वीक्ष्य—देखकर; तम्—इन्द्र द्वारा किया जाने वाले यज्ञ को; निर्वर्त्य—समाप्त करके; आगतः—लौटने पर; गुरुः—वसिष्ठ मुनि; अशपत्—निमि महाराज को शाप दे दिया; पतताम्—पतन हो जाय, नष्ट हो जाय; देहः—भौतिक शरीर; निमेः—निमि का; पण्डित-मानिनः—जो अपने को इतना पण्डित मानता है (जिससे कि वह अपने गुरु की अवज्ञा कर रहा है)।

इन्द्र का यज्ञ सम्पन्न कर लेने के बाद गुरु वसिष्ठ वापस आये तो उन्होंने देखा कि उनके शिष्य महाराज निमि ने उनके आदेशों का उल्लंघन कर दिया है। अतएव उन्होंने निमि को शाप दिया, ''अपने को पण्डित मानने वाले निमि का भौतिक शरीर तुरन्त ही नष्ट हो जाय।''

निमिः प्रतिददौ शापं गुरवेऽधर्मवर्तिने ।
तवापि पतताद्देहो लोभाद्धर्ममजानतः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

निमिः—निमि महाराज ने; प्रतिददौ शापम्—उलट कर शाप दे डाला; गुरवे—अपने गुरु वसिष्ठ को; अधर्म-वर्तिने—अधर्म को प्रोत्साहन देने वाले (क्योंकि उन्होंने अपने अपराधरहित शिष्य को शाप दे दिया था); तव—तुम्हारा; अपि—भी; पतताम्—पतन हो जाय; देहः—शरीर का; लोभात्—लोभवश; धर्मम्—धर्म को; अजानतः—न जानते हुए।

महाराज निमि द्वारा किसी प्रकार का अपराध न किये जाने पर व्यर्थ ही गुरु द्वारा शापित होने पर

उन्होंने भी बदले में शाप दिया, ''स्वर्ग के राजा इन्द्र से भेंट पाने के निमित्त आपने अपनी धार्मिक बुद्धि खो दी है; अतएव मेरा शाप है कि आपका भी शरीरपात हो जाय।''

तात्पर्य : ब्राह्मण का धर्म है कि वह तनिक भी लोभी न हो। किन्तु यहाँ पर इन्द्र से अधिक पारिश्रमिक पाने के लिए वसिष्ठ ने इस लोक में महाराज निमि की प्रार्थना की उपेक्षा की और जब निमि ने अन्य पुरोहितों की सहायता से यज्ञ सम्पन्न करा लिया तो वसिष्ठ ने व्यर्थ ही उसे शाप दे डाला। जब कोई व्यक्ति दूषित कर्मों के सम्पर्क में आता है तो उसकी शक्ति चाहे भौतिक हो या आध्यात्मिक घट जाती है। यद्यपि वसिष्ठ महाराज निमि के गुरु थे, किन्तु लोभ के कारण उनका पतन हुआ।

इत्युत्ससर्ज स्वं देहं निमिरध्यात्मकोविदः ।
मित्रावरुणयोर्जज्ञे उर्वश्यां प्रपितामहः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; उत्ससर्ज—त्याग दिया; स्वम्—अपना; देहम्—शरीर; निमिः—महाराज निमि ने; अध्यात्म-कोविदः—आध्यात्मिक ज्ञान से पूर्णतया अवगत; मित्रा-वरुणयोः—मित्र तथा वरुण के वीर्य से (उर्वशी को देखकर स्खलित); जज्ञे—उत्पन्न हुए; उर्वश्याम्—स्वर्गलोक की अप्सरा उर्वशी से; प्रपितामहः—वसिष्ठ, जो प्रपितामह कहलाते थे।.

यह कहकर अध्यात्म में पटु महाराज निमि ने अपना शरीर छोड़ दिया। प्रपितामह वसिष्ठ ने भी अपना शरीर त्याग दिया, किन्तु मित्र तथा वरुण के वीर्य से उर्वशी के गर्भ से उन्होंने पुनः जन्म लिया।

तात्पर्य : मित्र तथा वरुण की भेंट स्वर्गलोक की परम सुन्दर अप्सरा उर्वशी से हुई तो वे दोनों कामासक्त हो उठे। मुनि होने के कारण उन्होंने भरसक अपनी कामवासना को रोकना चाहा, किन्तु वे ऐसा नहीं कर पाये अतएव उनका वीर्य स्खलित हो गया। यह वीर्य एक जलपात्र में रखा गया और इसीसे वसिष्ठ उत्पन्न हुए।

गन्धवस्तुषु तद्देहं निधाय मुनिसत्तमाः ।
समाप्ते सत्रयागे च देवानूचुः समागतान् ॥ ७॥

शब्दार्थ

गन्ध-वस्तुषु—सुगन्धित वस्तुओं में; तत्-देहम्—महाराज निमि के शरीर को; निधाय—सुरक्षित रखकर; मुनि-सत्तमाः—वहाँ एकत्र महान् ऋषियों ने; समाप्ते सत्र-यागे—सत्र नामक यज्ञ के समाप्त होने पर; च—भी; देवान्—देवताओं से; ऊचुः—बोले; समागतान्—वहाँ पर एकत्र हुए।.

यज्ञ सम्पन्न करते समय महाराज निमि द्वारा त्यक्त शरीर को सुगन्धित वस्तुओं द्वारा सुरक्षित रखा गया और सत्रयाग के अन्त में मुनियों तथा ब्राह्मणों ने वहाँ एकत्रित सारे देवताओं से निम्नलिखित प्रार्थना की।

राज्ञो जीवतु देहोऽयं प्रसन्नाः प्रभवो यदि ।
तथेत्युक्ते निमिः प्राह मा भून्मे देहबन्धनम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

राज्ञः—राजा का; जीवतु—जीवित हो उठे; देहः अयम्—यह देह (जो सुरक्षित है); प्रसन्नाः—अत्यधिक प्रसन्न; प्रभवः—इसे करने में समर्थ; यदि—यदि; तथा—ऐसा ही हो; इति—इस प्रकार; उक्ते—(देवताओं द्वारा) कहा जाने पर; निमिः—निमि महाराज ने; प्राह—कहा; मा भूत्—मत करो; मे—मेरा; देह-बन्धनम्—भौतिक शरीर में बन्दी बनाना।

''यदि आप इस यज्ञ से संतुष्ट हैं और यदि वास्तव में आप ऐसा करने में समर्थ हों तो कृपया इस शरीर में महाराज निमि को फिर से जीवित कर दें।'' देवताओं ने मुनियों की यह प्रार्थना स्वीकार कर ली, किन्तु महाराज निमि ने कहा, ''कृपया मुझे भौतिक शरीर में पुनः बन्दी न बनाएँ।''

तात्पर्य : देवतागण मनुष्यों से कई गुना ऊँचे पद पर होते हैं। इसलिए ऋषियों तथा मुनियों ने अत्यन्त शक्तिशाली ब्राह्मण होते हुए भी देवताओं से प्रार्थना की कि वे महाराज निमि के शरीर को फिर से जीवित कर दें जिसे सुगन्धित लेपों में रखकर सुरक्षित किया गया था। हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि देवतागण इन्द्रियभोग में ही बलशाली हैं प्रत्युत वे मृत शरीर को जीवित करने जैसा कार्य भी कर सकते हैं। वैदिक साहित्य में ऐसे कितने ही उदाहरण भरे पड़े हैं। उदाहरणार्थ, सावित्री-सत्यवान कथा में सत्यवान मर चुका था और उसे यमराज ले जा रहे थे, किन्तु पत्नी सावित्री के आग्रह पर सत्यवान का वही शरीर फिर से जीवित हो उठा था। यह देवताओं की शक्ति के बारे में एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है।

यस्य योगं न वाञ्छन्ति वियोगभयकातराः ।
भजन्ति चरणाम्भोजं मुनयो हरिमेधसः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

यस्य—जिस शरीर का; योगम्—स्पर्श; न—नहीं; वाञ्छन्ति—ज्ञानी चाहते; वियोग-भय-कातराः—शरीर को पुनः त्यागने से भयभीत; भजन्ति—दिव्य सेवा करते हैं; चरण-अम्भोजम्—भगवान् के चरणकमलों की; मुनयः—बड़े-बड़े मुनि; हरि-मेधसः—जिनकी चेतना सदैव हरि के विचारों मे मग्न रहती है।

महाराज निमि ने आगे कहा : सामान्य रूप से मायावादी लोग भौतिक शरीर धारण नहीं करना

चाहते हैं क्योंकि उन्हें उसका त्याग करने में भय लगता है। किन्तु जिन भक्तों की चेतना सदैव भगवान् की सेवा से पूरित रहती है वे भयभीत नहीं रहते। निस्सन्देह, वे इस शरीर का उपयोग भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में करते हैं।

तात्पर्य : महाराज निमि भौतिक शरीर ग्रहण करना नहीं चाह रह थे क्योंकि वह बन्धन का कारण बनता। भक्त होने के कारण वे ऐसा शरीर चाहते थे जिसका उपयोग भगवान् की भक्ति करने के लिए किया जा सके।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर का गीत है—

जन्माओबि मोरे इच्छा यदि तोर

भक्तगृहे जनि जन्म हउ मोर

कीटजन्म हउ यथा तुया दास

''हे प्रभु! यदि आप चाहते हैं कि मैं जन्म लेकर पुन: भौतिक शरीर धारण करूँ तो मुझ पर यह कृपा कीजिए कि मैं आपसे दास, आपके भक्त, के घर में जन्म लूँ। तब मुझे कीट जैसे तुच्छ जीव के रूप में भी जन्म लेने में कोई आपत्ति नहीं होगी।'' श्री चैतन्य महाप्रभु ने भी कहा है—

न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये।

मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद् भक्तिरहैतुकी त्वयि॥

''हे ब्रह्माण्ड के स्वामी! मैं न तो धन चाहता हूँ, न अनुयायी, न सुन्दर पत्नी, न लच्छेदार भाषा में वर्णित सकाम कर्म। मेरी तो यही अभिलाषा है कि जन्म-जन्मांतर आपकी अहैतुकी भक्ति करता रहूँ।'' (*शिक्षाष्टक* ४) *जन्मनि जन्मनि* कहने से महाप्रभु का तात्पर्य सामान्य जन्म नहीं अपितु ऐसा जन्म है जिसमें वे भगवान् के चरणकमलों का स्मरण कर सकें। ऐसा शरीर वाञ्छनीय है। भक्त कभी भी योगियों तथा ज्ञानियों की तरह नहीं सोचता क्योंकि ये लोग भौतिक शरीर का बहिष्कार करके निर्विशेष ब्रह्मज्योति में समाहित होना चाहते हैं। भक्त को यह विचार-धारा पसन्द नहीं है। उल्टे, वह भौतिक या आध्यात्मिक शरीर में से किसी को भी स्वीकार करने को तैयार है क्योंकि वह भगवान् की सेवा करना चाहता है। यही असली मुक्ति है।

यदि कोई भगवान् की सेवा करने के लिए प्रबल इच्छुक है और यदि वह भौतिक शरीर स्वीकार भी कर ले तो कोई चिन्ता की बात नहीं रहती क्योंकि भक्त इसी भौतिक शरीर में मुक्त रहता है। इसकी पुष्टि श्रील रूप गोस्वामी द्वारा हुई है—

ईहा यस्य हरेर्दास्ये कर्मणा मनसा गिरा।

निखिलास्वप्यवस्थासु जीवन्मुक्तः स उच्यते॥

''जो व्यक्ति मनसा, वाचा, कर्मणा कृष्णभावना में (या, दूसरे शब्दों में कृष्ण सेवा में) कर्म करता है वह इस जगत में रहते हुए भी मुक्तात्मा होता है भले ही वह तथाकथित अनेक भौतिक कार्यकलापों में व्यस्त क्यों न हो।'' भगवान् की सेवा करने की इच्छा मनुष्य को जीवन की किसी भी अवस्था में मुक्त बनाने वाली है चाहे वह आध्यात्मिक शरीर हो या भौतिक शरीर। आध्यात्मिक शरीर में भक्त भगवान् का प्रत्यक्ष संगी बन जाता है, किन्तु ऊपरी तौर पर भौतिक शरीर में रहते हुए भी भक्त सदैव मुक्त रहता है और भगवान् की सेवा में उसी तरह लगा रहता है जिस तरह वैकुण्ठलोक का भक्त। उनमें कोई अन्तर नहीं रहता। कहा गया है—*साधुर्जीवो वा मरो वा*—भक्त चाहे जीवित हो या मृत हो उसकी एकमात्र चिन्ता भगवान् की सेवा करना है। *त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति।* जब वह शरीर छोड़ता है तो वह सीधे भगवान् का संगी तथा सेवा करने वाला हो जाता है, यद्यपि भौतिक जगत में भी भौतिक शरीर से वह यही काम करता होता है।

भक्त के लिए पीड़ा, हर्ष या भौतिक सिद्धि कुछ नहीं हैं। कोई यह तर्क कर सकता है कि मृत्यु के समय भक्त को भी शरीर त्याग करने के कारण कष्ट मिलता है। इस प्रसंग में उस बिल्ली का उदाहरण दिया जा सकता है जो अपने मुँह में चूहा तथा अपना बच्चा दोनों को पकड़ कर ले जाती है। चूहा तथा बिल्ली का बच्चा दोनों ही उसी मुँह में पकड़े जाकर ले जाये जाते हैं, किन्तु चूहे की जो अनुभूति होती है वह बिल्ली के बच्चे से भिन्न होती है। जब भक्त शरीर छोड़ता है (*त्यक्त्वा देहम्*) तो वह भगवद्धाम जाने के लिए तैयार होता है। अतएव उसकी अनुभूति उस व्यक्ति से निश्चित रूप से भिन्न होती है जिसे यमराज दण्ड देने के लिए ले जाता है। जिस व्यक्ति की चेतना सदैव भगवान् की सेवा में केन्द्रित रहती है वह भौतिक शरीर धारण करने से घबराता नहीं, किन्तु जो अभक्त भगवान् की सेवा में नहीं लगा रहता वह भौतिक शरीर

ग्रहण करने या इस शरीर को छोड़ने से बहुत भयभीत रहता है। अतएव हमें महाप्रभु चैतन्य के उपदेश का सदैव पालन करना चाहिए—*मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद् भक्तिरहैतुकी त्वयि।* चाहे हम भौतिक शरीर प्राप्त करें या आध्यात्मिक शरीर, इस से कोई अन्तर नहीं पड़ता; हमारी एकमात्र अभिलाषा भगवान् की सेवा करना होनी चाहिए।

देहं नावरुरुत्सेऽहं दुःखशोकभयावहम् ।
सर्वत्रास्य यतो मृत्युर्मत्स्यानामुदके यथा ॥ १० ॥

शब्दार्थ

देहम्—भौतिक शरीर; न—नहीं; अवरुरुत्से—धारण करने की इच्छा करता हूँ; अहम्—मैं; दुःख-शोक-भय-आवहम्—जो सारे कष्ट, संताप तथा भय का कारण है; सर्वत्र—सभी जगह, विश्वभर में; अस्य—जीव का, जिसने शरीर धारण किया है; यतः—क्योंकि; मृत्युः—मृत्यु; मत्स्यानाम्—मछलियों को; उदके—जल के भीतर रहने वाली; यथा—सदृश।

मैं भौतिक शरीर पाने का इच्छुक नहीं हूँ क्योंकि ऐसा शरीर विश्वभर में सर्वत्र दुख, शोक तथा भय का कारण होता है जिस तरह कि जल में रहने वाली मछली मृत्यु के भय से सदैव चिन्ताग्रस्त रहती है।

तात्पर्य : चाहे उच्चलोक हो या अधोलोक, भौतिक शरीर की मृत्यु ध्रुव है। जीव जब अधोलोक में या निम्न योनि में होता है तो वह अल्पकाल में मर जाता है और उच्चलोक में या उच्च योनि में जीव दीर्घकाल तक जीवित रहता है, किन्तु मृत्यु निश्चित है। इस तथ्य को समझना चाहिए। मनुष्य-जीवन पाकर मानव को तपस्या द्वारा जन्म, मृत्यु, जरा तथा रोग को समाप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। मानव सभ्यता का उद्देश्य है *मृत्युसंसारवर्त्मनि* अर्थात् जन्म-मृत्यु के चक्कर को रोकना। यह तभी सम्भव है जब मनुष्य कृष्णभावनाभावित हो अर्थात् वह भगवान् के चरणकमलों की शरण में जा चुका हो। अन्यथा उसे इस भौतिक संसार में पड़े-पड़े सड़ना होगा और जन्म, मृत्यु, जरा तथा रोग से प्रभावित होने वाला भौतिक शरीर धारण करना होगा।

यहाँ पर जल में रहने वाली मछली का उदाहरण दिया गया है। यद्यपि जल मछली के रहने के लिए अत्यन्त उपयुक्त स्थान है, किन्तु मछली कभी भी मृत्यु की चिन्ता से मुक्त नहीं हो पाती क्योंकि बड़ी-बड़ी मछलियाँ छोटी-छोटी मछलियों को खाने के लिए सदा उत्सुक रहती हैं। *फल्गूनि तत्र महताम्*—सारे जीव अपने से बड़े जीवों के ग्रास बनते हैं। यही प्रकृति की रीति है।

अहस्तानि सहस्तानामपदानि चतुष्पदाम् ।

फल्गूनि तत्र महतां जीवोजीवस्य जीवनम् ॥

"जो बिना हाथ वाले जीव हैं वे हाथ वाले जीवों के शिकार बनते हैं, जो पावों से विहीन हैं वे चौपायों के शिकार होते हैं। निर्बल बलवानों के अधीन होते हैं और यह सामान्य नियम लागू होता है कि एक जीव दूसरे का आहार होता है।" (*भागवत* १.१३.४७) भगवान् ने इस संसार की ऐसी रचना की है कि एक जीव दूसरे का भोजन बना हुआ है। इस तरह जीवन-संघर्ष चल रहा है और यद्यपि हम योग्यतम की उत्तरजीविता की बातें करते हैं, किन्तु कोई भी जीव भगवद्भक्त हुए बिना मृत्यु से बच नहीं सकता। *हरिं विना नैव सृतिं तरन्ति*—भक्त बने बिना कोई भी जन्म-मृत्यु के चक्र से छूट नहीं सकता। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (९.३) में भी हुई है—*अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि।* जिसे कृष्ण के चरणारविन्दों की शरण नहीं प्राप्त हो पाती उसे जन्म-मृत्यु के चक्र में ऊपर-नीचे घूमना पड़ता है।

देवा ऊचुः
विदेह उष्यतां कामं लोचनेषु शरीरिणाम् ।
उन्मेषणनिमेषाभ्यां लक्षितोऽध्यात्मसंस्थितः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

देवाः ऊचुः—देवताओं ने कहा; विदेहः—बिना भौतिक शरीर के; उष्यताम्—तुम जीवित रहो; कामम्—जैसी तुम्हारी इच्छा है; लोचनेषु—दृष्टि में; शरीरिणाम्—भौतिक शरीर वालों का; उन्मेषण-निमेषाभ्याम्—इच्छानुसार प्रकट तथा अप्रकट होओ; लक्षितः—देखे जाकर; अध्यात्म-संस्थितः—आध्यात्मिक शरीर में रहते हुए।

देवताओं ने कहा : महाराज निमि भौतिक शरीर से विहीन होकर रहें। वे आध्यात्मिक शरीर से भगवान् के निजी पार्षद बन कर रहें और वे अपनी इच्छानुसार जब चाहें सामान्य देहधारी लोगों को दिखें या न दिखें।

तात्पर्य : देवता चाहते थे कि महाराज निमि जीवित हो उठें, किन्तु वे दूसरा भौतिक शरीर धारण करना नहीं चाह रहे थे। ऐसी दशा में ऋषियों की प्रार्थना पर देवताओं ने निमि को वर दिया कि वे अपने आध्यात्मिक शरीर में रहते रहें। जैसा सामान्य रूप से आम लोग समझते हैं, आध्यात्मिक शरीर दो प्रकार के होते हैं। कभी-कभी वह प्रेतात्मक शरीर का द्योतक होता है। जब कोई दुरात्मा व्यक्ति पापकर्म करते हुए मरता है तो कभी कभी दण्ड मिलता है जिस से उसे पाँच तत्त्वों वाला स्थूल भौतिक शरीर नहीं प्राप्त होता

अपितु वह मन, बुद्धि तथा अहंकार वाले सूक्ष्म शरीर को प्राप्त होता है। किन्तु *भगवद्गीता* में बतलाया गया है कि भक्तगण भौतिक शरीर त्यागने के बाद समस्त भौतिक कलुषों से मुक्त आध्यात्मिक शरीर प्राप्त करते हैं (*त्यक्त्वां देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन*)—इस तरह देवताओं ने राजा निमि को वर दिया कि वे शुद्ध आध्यात्मिक शरीर में रह सकेंगे जो समस्त स्थूल तथा सूक्ष्म भौतिक कल्मष से रहित होता है।

भगवान् अपनी दिव्य इच्छानुसार दृश्य या अदृश्य रहते हैं। इसी प्रकार भक्त जीवन्मुक्त होकर अपनी इच्छानुसार दृश्य या अदृश्य रह सकता है। जैसा कि *भगवद्गीता* में कहा गया है—*नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः*—भगवान् कृष्ण हर किसी के लिए व्यक्त नहीं हैं। वे सामान्य व्यक्ति के लिए अदृश्य ही बने रहते हैं। अतः *श्रीकृष्ण-नामादि न भवेद् ग्राह्यम् इन्द्रियै*—कृष्ण तथा उनके नाम, यश, गुण एवं साज-सामान भौतिक रूप से समझ में नहीं आते। जब तक कोई आध्यात्मिक जीवन में आगे बढ़ा हुआ न हो (*सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ*) तब तक वह कृष्ण को देख नहीं सकता। अतएव कृष्ण को देखने की शक्ति उन्हीं की कृपा पर निर्भर करती है। अपनी इच्छानुसार देखे जाने या न देखे जाने का यही विशेषाधिकार महाराज निमि को दिया गया। इस प्रकार वे अपने मूल आध्यात्मिक शरीर से भगवान् के पार्षद के रूप में बने रहे।

अराजकभयं नृणां मन्यमाना महर्षयः ।
देहं ममन्थुः स्म निमेः कुमारः समजायत ॥ १२॥

शब्दार्थ

अराजक-भयम्—अराजकता फैलने के भय से; नृणाम्—सामान्य लोगों के लिए; मन्यमानाः—इस स्थिति पर विचार करते हुए; महा-ऋषयः—महान् ऋषियों ने; देहम्—शरीर को; ममन्थुः—मथा; स्म—भूतकाल में; निमेः—महाराज निमि के; कुमारः—एक पुत्र; समजायत—उत्पन्न हुआ।

तत्पश्चात् लोगों को अराजकता के भय से बचाने के लिए ऋषियों ने निमि महाराज के भौतिक शरीर को मथा जिसके फलस्वरूप शरीर से एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

तात्पर्य : *अराजक भयम्*—यदि सरकार अस्थिर एवं अनियमित रहे तो लोगों को भय बना रहता है। वर्तमान समय में यह भय निरन्तर बना हुआ है क्योंकि जनता की सरकार है। यहाँ हम देखते हैं कि ऋषियों ने निमि के भौतिक शरीर से एक पुत्र की प्राप्ति की जो जनता का सही ढंग से मार्गदर्शन कर सके क्योंकि क्षत्रिय राजा का यह धर्म है। क्षत्रिय वह है जो प्रजा को हानि से बचाता है। तथाकथित जनता की सरकार में कोई प्रशिक्षित क्षत्रिय राजा नहीं रहता। अतएव ज्योंही कोई व्यक्ति मतों को एकत्र करके प्रबल बन जाता है

त्योंही वह शास्त्रनिपुण विद्वान पण्डितों से प्रशिक्षण प्राप्त किये बिना ही मंत्री या राष्ट्रपति बन जाता है। हम देखते हैं कि कुछ देशों में तो सरकार एक दल से दूसरे दल की सरकार में बदल जाती है अतएव सरकार का भार सँभालने वाले लोग इसकी परवाह नहीं करते कि जनता सुखी है या नहीं, उन्हें तो अपनी कुर्सी बचाने की पड़ी रहती है। वैदिक सभ्यता राजतंत्र को वरीयता देती रही है। जनता को भगवान् रामचन्द्र की सरकार पसन्द थी, उसे महाराज युधिष्ठिर की सरकार पसन्द थी और महाराज परीक्षित, महाराज अम्बरीष तथा महाराज प्रह्लाद की सरकारें पसन्द थीं। राजा के अधीन उत्तमोत्तम सरकारों के उदाहरण मिलते हैं। धीरे-धीरे प्रजातांत्रिक सरकारें लोगों की आवश्यकताएँ पूरी करने में अक्षम होती जा रही हैं अतएव कुछ दल तानाशाह चुनने का प्रयत्न कर रहे हैं। तानाशाही भी राजतंत्र जैसी है, किन्तु प्रशिक्षित नेता से विहीन। वस्तुत: जनता तब सुखी होगी जब कोई प्रशिक्षित नेता, चाहे राजा या तानाशाह के रूप में, सरकार का भार ले और शास्त्रों के विधानों के अनुसार जनता पर शासन करे।

जन्मना जनकः सोऽभूद्वैदेहस्तु विदेहजः ।
मिथिलो मथनाज्जातो मिथिला येन निर्मिता ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

जन्मना—जन्म से; जनकः—सामान्य विधि से नहीं अपितु असामान्य रूप से जन्मा; सः—वह; अभूत्—बना; वैदेहः—वैदेह; तु—लेकिन; विदेह-जः—महाराज निमि के शरीर से उत्पन्न, जिन्होंने भौतिक शरीर त्याग दिया था; मिथिलः—मिथिल नाम से भी विख्यात; मथनात्—अपने पिता के शरीर के मन्थन से; जातः—उत्पन्न; मिथिला—मिथिला नामक राज्य; येन—जिसके (जनक) द्वारा; निर्मिता—बनाया गया।.

असामान्य विधि से उत्पन्न होने के कारण वह पुत्र जनक कहलाया और चूँकि वह अपने पिता के मृत शरीर से उत्पन्न हुआ था अतएव वह वैदेह कहलाया। अपने पिता के भौतिक शरीर के मन्थन से उत्पन्न होने से वह मिथिल कहलाया और उसने राजा मिथलि के रूप में जो नगर निर्मित किया वह मिथिला कहलाया।

तस्मादुदावसुस्तस्य पुत्रोऽभून्नन्दिवर्धनः ।
ततः सुकेतुस्तस्यापि देवरातो महीपते ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—मिथिल से; उदावसुः—उदावसु नाम का पुत्र; तस्य—उसका; पुत्रः—पुत्र; अभूत्—हुआ; नन्दिवर्धनः—नन्दिवर्धन; ततः—उससे; सुकेतुः—सुकेतु; तस्य—सुकेतु का; अपि—भी; देवरातः—देवरात; महीपते—हे राजा परीक्षित।.

हे राजा परीक्षित, मिथिल से जो पुत्र उत्पन्न हुआ वह उदावसु कहलाया; उदावसु से नन्दिवर्धन; नन्दिवर्धन से सुकेतु और सुकेतु से देवरात उत्पन्न हुआ।

तस्माद्बृहद्रथस्तस्य महावीर्यः सुधृत्पिता ।
सुधृतेर्धृष्टकेतुर्वै हर्यश्वोऽथ मरुस्ततः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—देवरात से; बृहद्रथः—बृहद्रथ; तस्य—उसका; महावीर्यः—महावीर्य; सुधृत्-पिता—सुधृति का पिता बना; सुधृतेः—सुधृति से; धृष्टकेतुः—धृष्टकेतु; वै—निस्सन्देह; हर्यश्वः—हर्यश्व; अथ—तत्पश्चात्; मरुः—मरु; ततः—उसके बाद।

देवरात से बृहद्रथ नामक पुत्र हुआ और बृहद्रथ का पुत्र महावीर्य हुआ जो सुधृति का पिता बना। सुधृति का पुत्र धृष्टकेतु कहलाया और धृष्टकेतु से हर्यश्व हुआ। हर्यश्व का पुत्र मरु हुआ।

मरोः प्रतीपकस्तस्माज्जातः कृतरथो यतः ।
देवमीढस्तस्य पुत्रो विश्रुतोऽथ महाधृतिः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

मरोः—मरु का; प्रतीपकः—प्रतीपक; तस्मात्—प्रतीपक से; जातः—उत्पन्न हुआ; कृतरथः—कृतरथ; यतः—जिससे; देवमीढः—देवमीढ; तस्य—उसका; पुत्रः—पुत्र; विश्रुतः—विश्रुत; अथ—उससे; महाधृतिः—महाधृति नामक पुत्र।

मरु का पुत्र प्रतीपक हुआ और प्रतीपक का पुत्र कृतरथ हुआ। कृतरथ से देवमीढ, देवमीढ से विश्रुत एवं विश्रुत से महाधृति हुआ।

कृतिरातस्ततस्तस्मान्महारोमा च तत्सुतः ।
स्वर्णरोमा सुतस्तस्य ह्रस्वरोमा व्यजायत ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

कृतिरातः—कृतिरात; ततः—महाधृति से; तस्मात्—कृतिरात से; महारोमा—महारोमा; च—भी; तत्-सुतः—उसका पुत्र; स्वर्णरोमा—स्वर्णरोमा; सुतः तस्य—उसका पुत्र; ह्रस्वरोमा—ह्रस्वरोमा; व्यजायत—उत्पन्न हुए।

महाधृति से कृतिरात नामक पुत्र हुआ, कृतिरात से महारोमा हुआ, महारोमा से स्वर्णरोमा और स्वर्णरोमा से ह्रस्वरोमा उत्पन्न हुआ।

ततः शीरध्वजो जज्ञे यज्ञार्थं कर्षतो महीम् ।
सीता शीराग्रतो जाता तस्मात्शीरध्वजः स्मृतः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

ततः—ह्रस्वरोमा से; शीरध्वजः—शीरध्वज; जज्ञे—उत्पन्न हुआ; यज्ञ-अर्थम्—यज्ञ करने के लिए; कर्षतः—भूमि जोतते समय; महीम्—पृथ्वी को; सीता—सीतादेवी, रामचन्द्र की पत्नी; शीर-अग्रतः—हल के अग्रभाग से; जाता—उत्पन्न हुई; तस्मात्—इसलिए; शीरध्वजः—शीरध्वज; स्मृतः—विख्यात हुआ।

ह्रस्वरोमा से शीरध्वज (जिसका नाम जनक भी था) नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। जब वह खेत जोत रहा था तो उसके हल (शीर) के अग्रभाग से सीतादेवी नामक कन्या प्रकट हुई जो बाद में भगवान् रामचन्द्र की पत्नी बनी। इस तरह वह शीरध्वज कहलाया।

कुशध्वजस्तस्य पुत्रस्ततो धर्मध्वजो नृपः ।
धर्मध्वजस्य द्वौ पुत्रौ कृतध्वजमितध्वजौ ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

कुशध्वजः—कुशध्वज; तस्य—उसका; पुत्रः—पुत्र; ततः—उससे; धर्मध्वजः—धर्मध्वज; नृपः—राजा; धर्मध्वजस्य—धर्मध्वज के; द्वौ—दो; पुत्रौ—पुत्र; कृतध्वज-मितध्वजौ—कृतध्वज तथा मितध्वज।

शीरध्वज का पुत्र कुशध्वज हुआ और कुशध्वज का पुत्र राजा धर्मध्वज हुआ जिसके कृतध्वज तथा मितध्वज नाम के दो पुत्र हुए।

कृतध्वजात्केशिध्वजः खाण्डिक्यस्तु मितध्वजात् ।
कृतध्वजसुतो राजन्नात्मविद्याविशारदः ॥ २० ॥
खाण्डिक्यः कर्मतत्त्वज्ञो भीतः केशिध्वजाद्द्रुतः ।
भानुमांस्तस्य पुत्रोऽभूच्छतद्युम्नस्तु तत्सुतः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

कृतध्वजात्—कृतध्वज से; केशिध्वजः—केशिध्वज; खाण्डिक्यः तु—तथा खाण्डिक्य नामक पुत्र भी; मितध्वजात्—मितध्वज से; कृतध्वज-सुतः—कृतध्वज का पुत्र; राजन्—हे राजा; आत्म-विद्या-विशारदः—आत्मविद्या में पटु; खाण्डिक्यः—राजा खाण्डिक्य; कर्म-तत्त्व-ज्ञः—वैदिक कर्मकांड में पटु; भीतः—डरते हुए; केशिध्वजात्—केशिध्वज से; द्रुतः—भाग गया; भानुमान्—भानुमान; तस्य—केशिध्वज का; पुत्रः—पुत्र; अभूत्—था; शतद्युम्नः—शतद्युम्न; तु—लेकिन; तत्-सुतः—भानुमान का पुत्र।

हे महाराज परीक्षित, कृतध्वज का पुत्र केशिध्वज हुआ और मितध्वज का पुत्र खाण्डिक्य था। कृतध्वज का पुत्र आध्यात्मिक ज्ञान में पटु था और मितध्वज का पुत्र वैदिक कर्मकाण्ड में। खाण्डिक्य केशिध्वज के भय से भाग गया। केशिध्वज का पुत्र भानुमान था और भानुमान का पुत्र शतद्युम्न हुआ।

शुचिस्तु तनयस्तस्मात्सनद्वाजः सुतोऽभवत् ।
ऊर्जकेतुः सनद्वाजादजोऽथ पुरुजित्सुतः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

शुचिः—शुचि; तु—लेकिन; तनयः—पुत्र; तस्मात्—उससे; सनद्वाजः—सनद्वाज; सुतः—पुत्र; अभवत्—पैदा हुआ; ऊर्जकेतुः—ऊर्जकेतु; सनद्वाजात्—सनद्वाज से; अजः—अज; अथ—तत्पश्चात्; पुरुजित्—पुरुजित; सुतः—पुत्र।

शतद्युम्न के पुत्र का नाम शुचि था। शुचि से सनद्वाज उत्पन्न हुआ और सनद्वाज का पुत्र ऊर्जकेतु था। ऊर्जकेतु का पुत्र अज था और अज का पुत्र पुरुजित हुआ।

अरिष्टनेमिस्तस्यापि श्रुतायुस्तत्सुपार्श्वकः ।
ततश्चित्ररथो यस्य क्षेमाधिर्मिथिलाधिपः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

अरिष्टनेमिः—अरिष्टनेमि; तस्य अपि—पुरुजित का भी; श्रुतायुः—श्रुतायु; तत्—उससे; सुपार्श्वकः—सुपार्श्वक; ततः—उससे; चित्ररथः—चित्ररथ; यस्य—जिसका; क्षेमाधिः—क्षेमाधि; मिथिला-अधिपः—मिथिला का राजा हुआ।

पुरुजित का पुत्र अरिष्टनेमि हुआ, जिसका पुत्र श्रुतायु हुआ, श्रुतायु का पुत्र सुपार्श्वक था और उसका पुत्र चित्ररथ था। चित्ररथ का पुत्र क्षेमाधि था जो मिथिला का राजा बना।

तस्मात्समरथस्तस्य सुतः सत्यरथस्ततः ।
आसीदुपगुरुस्तस्मादुपगुप्तोऽग्निसम्भवः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—क्षेमाधि से; समरथः—समरथ; तस्य—उसका; सुतः—पुत्र; सत्यरथः—सत्यरथ; ततः—उससे; आसीत्—हुआ; उपगुरुः—उपगुरु; तस्मात्—उससे; उपगुप्तः—उपगुप्त; अग्नि-सम्भवः—अग्निदेव का अंशरूप।

क्षेमाधि का पुत्र समरथ हुआ और उसका पुत्र सत्यरथ था। सत्यरथ का पुत्र उपगुरु हुआ और उपगुरु का पुत्र उपगुप्त हुआ जो अग्निदेव का अंशरूप था।

वस्वनन्तोऽथ तत्पुत्रो युयुधो यत्सुभाषणः ।
श्रुतस्ततो जयस्तस्माद्विजयोऽस्मादृतः सुतः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

वस्वनन्तः—वस्वनन्त; अथ—तत्पश्चात्; तत्-पुत्रः—उसका पुत्र; युयुधः—युयुध नामक; यत्—जिससे; सुभाषणः—सुभाषण; श्रुतः ततः—तथा उससे श्रुत हुआ; जयः तस्मात्—उससे जय हुआ; विजयः—विजय; अस्मात्—जय से; ऋतः—ऋत; सुतः—पुत्र।

उपगुप्त का पुत्र वस्वनन्त था, जिसका पुत्र युयुध हुआ। युयुध का पुत्र सुभाषण, सुभाषण का पुत्र श्रुत, श्रुत का पुत्र जय और जय का पुत्र विजय था। विजय का पुत्र ऋत था।

शुनकस्तत्सुतो जज्ञे वीतहव्यो धृतिस्ततः ।

बहुलाश्वो धृतेस्तस्य कृतिरस्य महावशी ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

शुनकः—शुनक; तत्-सुतः—ऋत का पुत्र; जज्ञे—उत्पन्न हुआ; वीतहव्यः—वीतहव्य; धृतिः—धृति; ततः—वीतहव्य का पुत्र; बहुलाश्वः—बहुलाश्व; धृतेः—धृति से; तस्य—उसका पुत्र; कृतिः—कृति; अस्य—इसका; महावशी—महावशी नाम का पुत्र था।.

ऋत का पुत्र शुनक था, शुनक का वीतहव्य, वीतहव्य का धृति, धृति का बहुलाश्व, बहुलाश्व का कृति तथा उसका पुत्र महावशी था।

एते वै मैथिला राजन्नात्मविद्याविशारदाः ।
योगेश्वरप्रसादेन द्वन्द्वैर्मुक्ता गृहेष्वपि ॥ २७॥

शब्दार्थ

एते—ये सारे; वै—निस्सन्देह; मैथिलाः—मिथिल के वंशज; राजन्—हे राजा; आत्म-विद्या-विशारदाः—आध्यात्मिक ज्ञानों में पटु; योगेश्वर-प्रसादेन—भगवान् कृष्ण जो योगेश्वर हैं उनकी कृपा से; द्वन्द्वैः मुक्ताः—वे सब के सबभौतिक जगत के द्वैतभाव से मुक्त हो गये; गृहेषु अपि—घर पर रहते हुए भी।.

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा परीक्षित, मिथिल वंश के सारे राजा अध्यात्म ज्ञान में पटु थे। अतएव वे घर पर रहते हुए भी संसार के द्वन्द्वों से मुक्त हो गये।

तात्पर्य : यह भौतिक जगत *द्वैत* कहलाता है। *चैतन्य चरितामृत* (*अन्त्य* ४.१७६) का कथन है—

'द्वैते' भद्राभद्रज्ञान, सब—'मनोधर्म'।

'एइभाल, एइ मन्द'—एइ सब 'भ्रम'॥

द्वैत के जगत में अर्थात् भौतिक जगत में तथाकथित अच्छाई तथा बुराई दोनों एक सी हैं। अतएव इस संसार में अच्छा-बुरा या सुख-दुख में अन्तर करना व्यर्थ है क्योंकि ये दोनों *मनोधर्म* हैं। चूँकि यहाँ पर हर वस्तु दुखदायी है अतएव कृत्रिम परिस्थिति उत्पन्न करके उसे सुख से पूर्ण मानना कोरा भ्रम है। मुक्तात्मा, प्रकृति के तीनों गुणों के प्रभावों से ऊपर रहने के कारण, हर परिस्थिति में ऐसे द्वन्द्वों से अप्रभावित रहता है। वह तथाकथित सुख-दुख सहन करके कृष्ण भक्त बना रहता है। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (२.१४) में भी हुई है—

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।

आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत॥

"हे कुन्तीपुत्र! सुख तथा दुख का अस्थायी प्रकट होना और कालक्रम से उनका अन्तर्धान होना जाड़े तथा गर्मी की ऋतुओं के आने-जाने के समान है। हे भरतपुत्र! ये इन्द्रियबोध से उत्पन्न होते हैं अतः मनुष्य

को अविचलित भाव से इन्हें सहन करना सीखना चाहिए।'' जो लोग मुक्त हैं वे भगवान् की सेवा करने के कारण दिव्यपद पर होने से, तथाकथित सुख-दुख की परवाह नहीं करते। वे जानते हैं कि ये परिवर्तनशील ऋतुओं के समान हैं जो शरीर के स्पर्श द्वारा अनुभूतिगम्य हैं। सुख तथा दुख आते जाते रहते हैं। अतएव पण्डित को अर्थात् विद्वान व्यक्ति को उनकी परवाह नहीं रहती। कहा गया है— *गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिता: ।* शरीर प्रारम्भ से मृत रहता है क्योंकि यह पदार्थ का पिंड है। इसमें सुख-दुख की अनुभूति नहीं होती। चूँकि शरीर के भीतर का आत्मा देहात्मबुद्धि में रहता है इसीलिए उसे दुख-सुख भोगना पड़ता है, किन्तु ये तो आते जाते रहते हैं। यहाँ यह ज्ञात होता है कि मिथिल वंश में उत्पन्न सारे राजा मुक्तात्मा पुरुष थे जो इस जगत के तथाकथित सुख-दुख से अप्रभावित थे।

इस प्रकार *श्रीमद्भागवत* के नवम स्कन्ध के अन्तर्गत ''महाराज निमि की वंशावली'' नामक तेरहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।